Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVI, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

संस्कृत साहित्य में गद्य का उद्भव विकास, गद्यकार व रचनाएं

मुकेश दायमा*

*सहायक आचार्य (संस्कृत) राजकीय महाविद्यालय, गढ़ी, परतापुर, जिला बाँसवाड़ा (राज.) भारत

प्रस्तावना – प्राचीन काल से ही हमारे राष्ट्रीय जन–जीवन पर जिसका प्रभूतमात्रा में प्रभाव पड़ा तथा सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं संस्कृति जिससे पूर्णतया अनुप्राणित है, वह संस्कत–भाषा ही इस महान देश की अनुपम एवं अमूल्य निधि है। संस्कृत विश्व की सभी भाषाओं में प्राचीनतम् व सर्वोत्कृष्ट भाषा है, यह भाषाओं की जननी तथा देवभाषा के रुप में जानी जाती है। यह संस्कृत नाम इस बात को स्पष्ट करता है कि यह भाषा परिष्कृत व संशोधित है। 'देवभाषा' अभिधान से विभूषित होकर यह समय की विशाल एवं परिवर्तित गतियों में भी सांस्कृतिक समस्त तत्वों को सुरक्षित स्वरुप में समाहित किए हैं। अत: संस्कृत साहित्य का अध्ययन किये बिना भारतीय संस्कृति का पूर्णज्ञान कभी सम्भव नही है, इसलियें भारतीय संस्कृति व जीवन भाषायी मूल्यों के ज्ञान के लिए संस्कृत साहित्य का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।भारत की आदि जातियों में शीर्षस्थ आर्य जाति का प्राचीनतम एवं पावन स्मारक सम्पूर्ण वैदिक–साहित्य संस्कृत भाषा का ही वह अनुपम एवं पुरातन स्वरूप है, जिसें दीर्घकालीन विषम परिस्थितियाँ एवं आक्रान्ताओं की बर्बर–विनाशक शक्तियाँ भी विनष्ट नहीं कर सकीं। यही नही इस साहित्य से भारतीय ज्ञान–विज्ञान की नाना शाखा–प्रशाखायें प्रस्फुटित हुई तथा इसी के कारण भारत ने विश्व में विशेष सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया हैं।

साहित्य वस्तुत: वाङ्मय के विशेष रूप में शब्द तथा अर्थ के मंजुल सामंजस्यका सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति है – 'सहितयो: भाव: साहित्यम्' अर्थात् शब्द का अर्थ और भाव। आचार्य भामह ने अपने ग्रन्थ **'काव्यालंकार'** में काव्य की निम्न परिभाषा दी है–**'शब्दार्थौ सहितम् काव्यम्'**। महाकवि भर्तहरि का साहित्य से तात्पर्य उन सुकुमार काव्यों से जिसमें शब्द और अर्थ का समानुरुप संन्निवेश है, जहाँ शास्त्र में अर्थ–प्रतीति के लिये ही शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु काव्य में शब्द तथा अर्थ दोनों समान ही श्रेणी के होते हैं। एक दुसरे से न घटकर होता है और न बढ़कर होता है। मानव– जीवन के यथार्थ तथा आदर्श का समन्वित एवं सन्तुलित स्वरूप व्यक्त करने वाले इस अद्धितीय बोध साधन को उपयोगी साहित्य की संज्ञा ठीक ही दी जाती है। आदर्श–वातावरण के साथ जीवन के यथार्थ का चित्रण ही सत्साहित्य का उद्देश्य है।इस दृष्टि से संस्कृत समष्टि रूप से 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की समुन्नत भावना को समाहित किए सदुद्देश्य पूर्ण होने से सत्साहित्य की कोटि में आता है।

पाश्चात्य विद्धान् विण्टरनित्ज ने लिखा है कि 'लिटरेचर' (साहित्य) शब्द अपने व्यापक अर्थ में जो कुछ भी व्यक्त कर सकता है, वह सब संस्कृत में विद्यमान हैं। धार्मिक तथा ऐहिकता (सेक्यूलर) रचनायें, महाकाव्य, लिरिक (गीति काव्य) नाटकीय तथा नीति सम्बन्धी कविता, वर्णनात्मक, अलंकृत एवं वैज्ञानिक गद्य सब कुछ इसमें भरा पड़ा है। वेदों से सुप्रवाहित संस्कृत साहित्य–मन्दाकिनी की पावन एवं अजस्रधारा रामायण–महाभारत काल में विस्तार को प्राप्त करती, परवर्ती भास, कालिदास, अश्वघोष, भारवी, भवभूति, माघ, बाणभट्ट, जयदेव आदि काव्य–कला कोविद महाकवियों की उत्कृष्ट कृतियों के माध्यम से भारतीय जन–जीवन को आकण्ठ रसप्लावित कर महती शान्ति प्रदान करती रही है।

समग्र संस्कृत साहित्य के इतिहास को सामान्यत: दो भागों में विभक्त किया गया है–

(1) वैदिक संस्कृत साहित्य :– (3000 ई. पू. से 500 ई. पू. तक)

(2) लौकिक संस्कृत साहित्य :– (500 ई. पू. से अब तक)[1]

(1) वैदिक साहित्य :– वैदिक साहित्य के अन्तर्गत –वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् व सूत्र साहित्य आदि का परिगणन किया जाता हैं।

(2) लौकिक साहित्य :– लौकिक साहित्य को दो भागों में बाटा गया हैं। **'दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुन: काव्यं द्विधामतम्'** साहित्यदर्पण–6/1–1 (1) दृश्य काव्य (2) श्रव्य काव्य।

(1)दृश्य काव्य– जिस काव्य का अभिनय किया जा सके वह दृश्य काव्य कहलाता है। दृश्य काव्य दर्शनीय व श्रवणीय दोनों होता है। यह अभिनय के कारण से सहृदय सामाजिकों द्वारा देखा जाता है। **'दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपोतरूपकम्'** साहित्यदर्पण–6/1 दृश्य काव्य के पुन: दो भेद होते हैं– रूपक व उपरूपक, रूपक के 10 भेद में उपरूपक के 18 भेद हैं। संस्कृत में नाटकों के लियें पारिभाषिक शब्द रूपक है।

(2)श्रव्य काव्य–जो काव्य मात्र श्रवणीय हो वह श्रव्य काव्य कहलाता है। **'श्रव्यं श्रोतव्यमात्र तत्।'** साहित्यदर्पण–7/313–1 इसका अभिनय नही किया जाता, इसमें पाठक श्रवण व पठन के माध्यम से काव्यानन्द प्राप्त करता है। श्रव्य काव्य के तीन भेद होतें हैं–**(1) गद्य काव्य(2) पद्य काव्य (3) चम्पू काव्य।**

(क) गद्य काव्य:–आचार्य दण्डी के अनुसार **'अपाद: सन्तानो गद्यम्'** काव्यादर्श1/23 अर्थात् पदबन्ध रहित वाक्य विन्यास गद्य कहलाता हैं। गद्य काव्य छन्द आदि के बन्धन से रहित होता है। जैसें कादम्बरी आदि। इसके दो भेद होतें है– (1) कथा व (2) आख्यायिका।

(ख) पद्य काव्य :–पद्य काव्य छन्दोबद्ध होता है। **छन्दोबद्धपदं पद्यम्**। सा.द. 6/314–1 जैसे– किराताजुनीयम् आदि। इसके तीन भेद होतें है– (1) महाकाव्य (2) खण्डकाव्य(गीतिकाव्य) (3) मुक्तक काव्य।

(1)महाकाव्य – महाकाव्य में जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रण होता है। **'सर्गबन्धों महाकाव्यं'**सा.द. 6/315–324

(2)खण्डकाव्य – इसमें किसी घटना का मार्मिक चित्रण किया जाता है। **'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।'** सा.द. 6/329।

(3) मुक्तक काव्य :–मुक्तक काव्य में प्रत्येक छन्द स्वत: पूर्ण होता है। **'तेन मुक्तेन मुक्तकम्'** सा.द. 6/314।

(ग) चम्पूकाव्य :–गद्य तथा पद्य के सम्मिश्रण को चम्पू काव्य कहते है।**'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयतें।'** सा.द. 6/336 जैसे– नलचम्पू आदि।[2]

गद्य काव्य का स्वरुप

'वृतबन्धोज्झितं गद्यम्' अर्थात् छन्द के बन्धन से रहित जो काव्य होता है उसे गद्यकाव्य कहतें है। गद्य काव्य में रस, अलंकार, गुण आदि के सद्भाव से सामाजिक रसास्वादन करता है। काव्य की सभी विधाओं में गद्य काव्य को सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, अतएव कहा जाता है–**'गद्यंकवीनां निकषं वदन्ति।'** गद्य में विचार के तत्व प्रबल होतें है, जबकी पद्य में भावना की प्रधानता होती है। विस्तृत को सक्षेंप में और सक्षेंप को विस्तार से कहने का सामर्थ्य गद्य शैली में होता है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति तथा दुरुह दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन गद्य शैली से ही होता है। संश्लिष्टता तथा संक्षिप्तता संस्कृत गद्यों की प्रमुख विशेषता होती है। 'समास' संस्कृत भाषा का प्राण है, जिसके कारण गद्य में भावग्राहिता, गाढ़बन्धता तथा प्रभान्विति आती है और ओज गुण संस्कृत गद्यों की एक अन्य विशिष्टता है, अतएव कहा गया है कि –**'ओज: समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।'**

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य विचार विनिमय का तथा शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन करने का उचित माध्यम है। संस्कृत गद्यों की विशिष्टताओं को हम प्राचीन वैदिक साहित्य में तथा शिलालेखों में भी प्रचुरता सें देख सकते हैं। संस्कृत साहित्य का मौलिक स्वरुप तो गद्य में ही है लेकिन कण्ठस्थीकरण की सरलता के लिए पद्यकाव्यों की रचना प्रारम्भ हुई है। गद्य शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट वचनार्थक **'गद्'** धातु सें **यत्** प्रत्यय जोड़ने पर **'गद्य'**शब्द बनता है, जिसका अर्थ है स्पष्ट कहने योग्य या स्पष्ट कहना है।**'अपाद: पदसन्तानो गद्यम्'** अर्थात् चरण या पाद विभाजन से रहित शब्द रचना को गद्य कहतें है। संस्कृत का गद्य प्राचीनता तथा प्रौढ़ता, उपादेयता तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि सें हमारे साहित्य का एक गौरवपूर्ण अंग है।

स्वरुप की दृष्टि सें संस्कृत गद्य तीन रुपों में प्राप्त होता है

(1) वैदिक गद्य :– बोलचाल का सरल गद्य।

(2) लौकिक गद्य :– प्रौढ़, अलंकृत एवं प्रांजल भाषा युक्त गद्य।

(3) पौराणिक गद्य :– उपर्युक्त दोनों का मिश्रित रुप।

इन रुपों में लौकिक गद्य को दो भागों में बाटां गया है–

(1)शास्त्रीय गद्य :– इसमें विषयवस्तु पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जैसें– व्याकरण शास्त्र, (महाभाष्य आदि) दर्शनशास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र आदि।

(2) साहित्यिक गद्य :– इसमें रस, अंलकार, गुण आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं।

जैसे– प्राचीन श्लिालेख, नाटकों में प्रस्तुत संवाद आदि।

साहित्यिक गद्य दो प्रकार के होते है– 1. **कथा** व 2. **आख्यायिका**

- **कथा –** कथा कवि कल्पित होती है, इसका वक्ता नायक नही होकर अन्य कोई होता है। इसमें कन्या हरण, संग्राम, विप्रलम्भ, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सन्ध्या, रजनी, आदि का विस्तृत वर्णन होता है। कथा में विशिष्ट सांकेतिक शब्दों का प्रयोग होता है। कथा संस्कृत के अलावा प्राकृत या अपभ्रंश भाषा में भी हो सकती है। इसकी शैली वर्णनात्मक होती है तथा इसमें किसी निश्चित छन्द के पद्यों का समावेश नही होता है। जैसें– कादम्बरी, वृहत्कथा, वासवदत्ता आदि।
- **आख्यायिका**– यह ऐतिहासिक इतिवृत्ता पर आधारित होती है। इसमें नायक स्वयं वक्ता होता है। यह उच्छवासों में विभक्त होती है, व अपरवक्त्र छन्दों के पद्यों का समावेश होता है। इसमें कथा में दिये गये विषयों का वर्णन नही होता है। इसमें विशिष्टि शब्दों का प्रयोग भी नही होता है। यह भावात्मक शैली में तथा संस्कृत भाषा मे ही होती हैं। जैसे– हर्षचरितम्, दशकुमारचरितम् आदि।[3]

गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास –'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' उक्ति प्राचीन काल से ही गद्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हुई प्रचलित हैं। वैदिक काल सें ही संस्कृत में गद्य प्रयुक्त हुआ है 'कृष्णयजुर्वेद' ब्राह्मण तथा कतिपय उपनिषद् गद्य में है। यास्काचार्य (ई.पू.700) ने 'निरुक्त' की रचना गद्य में ही की है। पतंजलि (150 ई.पू.) द्वारा रचित ग्रन्थ 'महाभाष्य' भी गद्य के माध्यम सें लिखा गया है। प्राचीन काल से ही गद्य का उपयोग प्रधानतया व्याकरण ग्रन्थों, टिकाओं, ज्योतिष आदि ग्रन्थों में हुआ है। गद्य काव्य के उद्भव के विषय में निश्चित समय का ज्ञान यद्यपि हमें नही है तथापि इतना भी निश्चित हैं कि यह संस्कृत साहित्य की एक पुरातन शाखा है। वार्तिकार कात्यायन (300ई.पू.) ने **'आख्यायिका'** का उल्लेख किया है–**'लुबाख्यायिकेभ्यो बहुलम्' आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च'** (वार्तिक) आख्यायिका तथा कथा गद्य काव्य के ही दो भेद है– **'आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्ध कल्पना कथा'** (अमरकोष)। पतंजलि ने भी अपने 'महाभाष्य' में वासवदत्ता, भैमरथी एवं सुमनोत्तरा नामक तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। 'वासवदत्ता सुमनोतरा च भवति। भैमरथी', (महाभाष्य 4/3/57)। कतिपय उपलब्ध शिलालेखों में प्राचीन विकसित गद्य की झलक मिलती है, जिनमें रुद्रदामन (150 ई.) तथा गुप्तकालीन (400 ई.) शासन के शिलालेख उल्लेखनीय है, जिनमें अलंकृत गद्य का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि गद्य–काव्य कला दण्डी, सुबन्धु एवं बाण के शताब्दियों पूर्व विकसित रही होगी। स्वयं बाणभट्ट ने भट्टार हरिश्चन्द्र नामक उच्चकोटि के गद्य लेखक का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वररुचि कृत –चारुमती, रामिल सोमिलकृत –शूद्रक कथा तथा श्री पालिकृत– तरंगवती का साहित्य मे उल्लेख संस्कृत गद्य–काव्य के विकास–क्रम की एक सम्बन्ध श्रृंखला सिद्ध करता है। वैदिक काल से अब तक गद्य की रस विकास श्रृंखला में अलंकृत एवं अनलंकृत गद्य में दण्डी, सुबन्धु एवं बाणभट्ट प्रधानतया गद्य काव्य की चरमोन्नति के प्रतिनिधि रचनाकार है। वैदिक काल से गद्य के विकास–क्रम में उनके स्वरूप का विहंगावलोकन करने पर पातें हैं कि ब्राह्मणों के गद्य की भाषा अति प्राचीन है तथा यह पाणिनीय व्याकरण का अनुसरण न कर वाक्य–विन्यास एवं शब्दावली के स्वरूप में आर्ष है। वाक्य छोटें, शब्द बहुल होते हैं व शैली सरल होती है।उपनिषदों का गद्य सरल एवं जीवन्त है, जिसमें आडम्बर का अभाव और विनोद का आकर्षण है। जहाँ ब्राह्मणों के गद्य याज्ञिक प्रक्रियाओं से नीरस हैं, वहाँ उपनिषदों के गद्य में सत्यान्वेषणार्थ महर्षियों के मन की स्वछता तथा स्वस्थता प्रतिबिम्बित हैं। उपनिषदों में दीर्घ समासों का अभाव प्राय: दृष्टिगत होता है। ब्राह्मणों एवं

उपनिषदों की अपेक्षा सूत्र शैली के गद्य में कम शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने के लिए क्रियापदों का अभाव है तथा दीर्घ समास बहुला शैली का आर्विभाव हुआ।

लौकिक संस्कृत गद्य दो स्वरूपों में दृष्टिगत होता है -(1) अनलंकृत शैली का गद्य-व्याकरण, अर्थशास्त्र, दर्शन, भाष्यों का विवेचन प्रधान है। (2) अलंकृत शैली का गद्य - नाटकों, चम्पूकाव्योंतथा गद्यकाव्यों में प्रयुक्त हुआ हैं।अनलंकृत गद्य में व्याकरण में महाभाष्य का गद्य उल्लेखनीय है, जिसकी भाषा सरल, प्रांजल एवं सशक्तभावाभिव्यक्तिपूर्ण है। उसके वाक्य छोटे-छोटे, विशद एवं सारगर्भित होतें हैं। अलंकृत गद्य का प्राचीनतम निदर्शन महाक्षत्रप रुद्रदामन (150 ई.) का गिरनार वाला शिलालेख है। हरिषेण कृत समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति (350 ई. के लगभग) में गद्य की जिस कृत्रिम अथवा अलंकृत शैली का स्वरूप हमें प्राप्त होता हैं, उसका दण्डी, सुबन्ध एवं बाण की रचनाओं में पूर्ण परिपाक हुआ है।[4]

संस्कृत के प्रमुखगद्यकार

महाकवि दण्डी – महाकवि दण्डी भारवी के प्रपौत्र थें, इनका जन्म कांचीनगर में हुआ था तथा इनका स्थिति काल सामान्यतया 600 ई. के आस पास स्वीकार किया जाता है। राजशेखर रचित शारंङ्धर पद्धति में 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता' सूक्ति के आधार पर उनके तीन ग्रन्थ माने जाते है-

(1) **काव्यादर्श**- यह एक अलंकार शास्त्रिय ग्रन्थ है।

(2) **दशकुमारचरितम्**- यह दण्डी का प्रसिद्ध गद्यकाव्य है।

(3) **अवन्तिसुन्दरी कथा**- यह दण्डी का अपूर्ण गद्यकाव्य है।

दशकुमार चरित व काव्यादर्श के आधार पर ज्ञात होता है, कि दण्डी दक्षिणी भारत में विदर्भ देश के निवासी थें। दशकुमार चरित में उल्लिखित कलिंग, आन्ध्र देशों के अतिरिक्त कावेरीपत्तन आदि नगरों एवं दक्षिण में प्रचलित सामाजिक एवं पारिवारिक प्रथाओं के वर्णन के आधार पर उनका दाक्षिणात्य होना सिद्ध होता है। दशकुमारचरित के अध्ययन से यह भी प्रतीत होता है कि दण्डी एक सम्पन्न व्यक्ति थें। जिन्होंने सभी प्रकार के सांसारिक अनुभव प्राप्त कियें थें।

दशकुमार चरित – संस्कृत गद्य-काव्य की इस अनुठी रचना को **'धूर्तों का रोमांस'** भी कहा जाता है। इसमें दश राजकुमारों के देश-देशान्तरों में परिभ्रमण, दुस्साहसपूर्ण कार्यकलापों, जीवन के संघर्षों आदि का यथार्थ हृदयहारी वर्णन हैं। वर्तमान में उपलब्ध 'दशकुमार चरित' के स्वरूप को हम तीन भागों में पातें है- 1. पूर्वपीठिका, 2.दशकुमारचरित तथा 3.उत्तरपीठिका । इसमें पूर्वपीठिका के अन्तर्गत पॉच उच्छ्वासों का वर्णन किया गया है, व दशकुमार चरित में आठ उच्छ्वासों का वर्णन है तथा उत्तरपीठिका में उपसंहार दिया हुआ है। इसमें से केवल दशकुमार चरित को ही दण्डी की मूलकृति स्वीकार किया जाता हैं। ग्रन्थ के आदि-अन्त भाग के किसी कारण वश नष्ट होने पर सम्भवत: दण्डी क किसी भक्त ने मूलग्रन्थ की भाषा-शैली में पूर्व एवं उत्तरपीठिका लिखकर पूर्ण किया होगा। दशकुमारचरित में छल-कपट, मार-काट, चोरी-चारी आदि कार्य कलापों का, साथ ही चतुर जादूगरों, पाखण्डी साधु, कामान्ध राजपुरूषों, हृदयहीन वेश्याओं, कुट्टिनियों आदि का मनोरंजन वर्णन होने से यह यह एक अनूठी रूढ़िविरोधी गद्यकाव्य की रचना है। दशकुमार चरित में जहां कथानक विचित्र है, वहां उसके अनुरूप सरस एवं प्रवाहपूर्ण वर्णन-शैली भी है। व्यंग्य एवं विनोद का पुट देकर तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण किया है। इसके नायक दशराजकुमार अपनी इष्टि सिद्धि के लिए उचित-अनुचित साधनों में कोई अन्तर नहीं मानते। दण्डी का चरित्र चित्रण भी विशद हैं। सजीव पात्रों के माध्यम से उन्होनें हमारे समक्ष लोक-जीवन का यथार्थ पक्ष उपस्थित किया है। विशद चरित्र-चित्रण, नैसर्गिक गद्य शैली, बुद्धि-विकास, शिष्ट परिहास, न्यून विषयोन्तरों, रसानुकूल शब्दविन्यास, यथार्थ एवं आदर्श का सुन्दर समन्वय आदि विशेषताओं के कारण 'दशकुमार चरित' संस्कृत गद्य साहित्य की एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है।[5]

महाकवि दण्डी की भाषा शैली – महाकवि दण्डी की भाषा अलंकारों के आडम्बर से चित्रविचित्र न होकर नैसर्गिक प्रवाहमयी, प्रसादगुणयुक्त, परिमार्जित एवं मुहावरेदार होने से सजीव है। सामान्यतया उनकी भाषा आख्यानात्मक काव्य होने से श्लेष आदि अलंकारों तथा दीर्घसमासों के बोझसे बोझिल न होकर स्थल-स्थल पर ललित पदावली की योजना से युक्त है। सुबन्धु एवं माघ के समान उनका समान उनका गद्य न तो 'प्रत्यक्षर श्लेषमय' है और न बाणभट्ट के गद्य के समान 'सरसस्वरवर्णपद' से विभूषित साहित्यिक गद्य का ही रूप है। उनका वाक्य विन्यास आयासजनक न होकर ओजस्वी, सुव्यक्त एवं ललित है क्योंकि वाक्य प्राय: छोटे-छोटे होते हैं। महाकवि दण्डी सुन्दर वैदर्भी-गद्य शैली के आचार्य रूप में प्रतिष्ठापित किये जा सकतें हैं। संक्षेप में अर्थ की स्पष्टता रस की सम्यक् अभिव्यक्ति शब्द विन्यास की चारूता एवं कल्पना की उर्वरता दण्डी की शैली की विशेषतायें हैं। उनके पदलालित्य की सहृदय विद्धानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है- 'दण्डिन: पदलालित्यम्' दण्डी के पदविन्यास अनुप्रासमय एवं मनोरस शब्दयोजनामय होन से रसाभिव्यक्ति पूर्ण है - यत्र तत्र कवि के गद्य की भाषा पर्याप्त अलंकृत दृष्टिगत होती ह, किन्तु उनके काव्यालंकार सीमितमात्रा में प्रयुक्त होनें से सर्वत्र मनोरम, एवं अनुरूप हैं। उनसे भावों में दुरूपता का अनुभव बिल्कुल नहीं होता। जैसें-**'इन्द्रनीलशिलाकार रम्यालकपंक्तिद्धिगुणकुण्डलितम्लाननालीकनाललितलम्बश्रवण पासशयुगुलमाननकमलम्।'** दण्डी अपनें शब्दशोधन में एवं लौकिक सत्योक्तियों को ओजोमय भाषा में अभिव्यक्त करने में निष्णात हैं। जैसें - **आत्मानमात्मना नवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्त:' इह जगति हि न निरीहं देहिनं श्रिय: संश्रयन्ते'** आदि।संक्षेप में महाकवि दण्डी का गद्य न श्लेष के बोझ से बोझिल, न समासों के प्रहार से प्रताड़ित, न अलंकारों के आधिक्य से आक्रान्त है, अपितु स्वाभाविक-भावाभिव्यक्ति अर्थात् ललित पदविन्यास से रसपूर्ण, अर्थ की स्पष्टता उनके गद्य की आत्मा है। अतएव सुललित एवं सुभग, प्रौढ़ एवं रसपेशल, चमत्कारिणी काव्यकला से समन्वित गद्य की रचना करने के कारण ही भारतीय आलोचकों ने दण्डी को ही एक मात्र कवि माना हैं।

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशय:।
जाते जगति वाल्मीके: कवयस्त्वयि दण्डिनि।।[6]

सुकवि सुबन्धु – वासवदत्ता के रचयिता सुकवि सुबन्धु का स्थितिकाल यद्यपि अनिश्चित हैं, तथा भवभूति के मालती-माधव मे मालती वर्णन और वासवदत्ता मे वर्णन साम्य के आधार पर भवभूति (700 ई.) के पूर्ववर्ती इन्हें मानना उचित है। 'जिनभद्र-क्षमा श्रमण कृत 'विशेषावश्यक-भाष्य' में वासवदत्ता व तरंगवती के उल्लेख के आधार पर सुबन्धु का स्थिति काल 600 ई. के आस-पास स्वीकार किया जा सकता है।

गद्यकाव्य को अलंकारों, दीर्घसमासों, एवं अक्षराडम्बरों से चित्र-विचित्र बनानें की प्रवृत्ति दण्डी में नहीं पायी गई किन्तु उनके परवर्ती गद्यकारों एवं आचार्यों में यह प्रवृत्ति अधिक बढ़ती गई। परिणामत: गद्य काव्य का उत्कर्ष

शब्द विन्यास के सौष्ठव, वर्णन की प्ररोचना, वाक्यों सहित विस्तार एवं ध्वनि के साटोप स्वप्न और अवपातन में निगूढ़ है, इस कोटि के गद्य काव्य की छटा अपने उच्चतम उद्रेक में सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' में सुलभ होती हैं। सुबन्धु की वासवदत्ता उनकी उपलब्ध एक मात्र उत्कृष्ट कृति हैं, जो गद्य वाक्य के उस रूप का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसमें कथानक लघुकथा कल्पनाजन्य वर्णनविस्तार की प्रधानता रहती है। वासवदत्तामें राजकुमार कन्दर्पकेतु एवं राजकुमारी वासवदत्ता की प्रणय कथा का वर्णन हैं। इसका लघुकथानक प्रकृति-वर्णन, सौन्दर्य-चित्रण एवं पाण्डित्यप्रदर्शन द्वारा अतिशय विस्ताार पाकर भी कथा प्रवाह में अवरूद्धता है। यह एक श्लेष बहुल रचना है जिसके सम्बन्ध में सुबन्धु ने दावा किया है कि उनके काव्य में प्रत्यक्षर में श्लेष निहित हैं-**'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवेदग्वनिधि प्रबन्धम्।'**पौराणिक संकेतों के कारण उनके श्लेष-प्रयोग और भी दुरूह हो गयें हैं। सुबन्धु की इस कृति में यद्यपि वर्णन विस्तार और शब्दभंडार की अतिशयता है तथापि कल्पना एवं चरित्र चित्रण का अभाव हैं वासवदत्ता में विषयान्तरों का भी बाहुल्य है।[7]

सुकवि सुबन्धु की शैली - जहाँ दण्डी ने सरल, प्रासादिक एव मनोरम वैदर्भी शैली को ग्रहण की है, वहां सुबन्धु ने अनिशयोंक्ति, अनुप्रास और समास प्रधान शैली को अपनाया है, जिसमें दीर्घ वाक्य विन्यास, शब्दाडम्बर, एवं कृतिमता अधिक होती है। उनकी उनकी शैली में न तो दण्डी का हास, ओज एवं वैचित्र्य है और न बाण जैसी कल्पना शक्ति एवं वर्णन प्रतिभा ही उनकी समास प्रचुर भाषा में सौष्ठव, प्रसाद एवं माधुर्य की न्यूवता, आडम्बर एवं असंगति अधिक है। सुबन्धु अलंकारों का असीमित रूप में प्रयोग कर अपनी शैली के लालित्यमय प्रवाह की रक्षा नही कर सके है। एक ही क्रिया पर आश्रित विपुलकाय वाक्य लिखने में वे अद्धितीय हैं फिर भी उन्होनें संवादों के अतिरिक्त अन्य उपयुक्त स्थलों पर छोटें वाक्यों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए-

विरहविधुराया: कमलिन्या हृदयमिव, द्विधा पपात चक्रवाकमिथुनम्।
आगमिष्यतो हिमकरदयितस्य पार्श्वे संचरन्ती, कुमुदिन्या भ्रमरमाला दूतीवालक्ष्यत।।

सुबन्धु के समासों में एक प्रकार का स्वर-माधुर्य एवं अनुप्रासों में संगीत विद्यमान है किन्तु उनके पौराणिक संकेतमय श्लेष (जैसे नन्दगोप इव यशोदान्वित:, जरासन्ध इव घटितसंधिविग्रह:) दुरह और मानसिक व्यायामयुक्त हैं, फिर भी चित्रोमय एवं अलंकृत गद्य शैली की दृष्टि से वासवदत्ता चमत्कारपूर्ण एवं परिष्कृत रचना हैं।[8] राघवपाण्डवीयकार कविराज नें सुबन्धु को वक्रोक्ति मार्ग निपुण कहतें है-

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रय:।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणा: चतुर्थो विद्यते न वा।।[9]

सुबन्धु ने नायक-नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन-रसाभिव्यक्ति तथा अलंकारों के निबन्धन का सायास प्रयास किया है। सुबन्धु की शैली समास प्रधान गौड़ी है।सुबन्धु की कृतियों में श्लेष तथा विरोधाभास अलंकारों का आधिक्य है।

वासवदत्ता - कविवर सुबन्धकृत **'वासवदता'** गद्यकाव्य के 'कथा' के लक्षण के अनुसार ही निर्मित की गई है। कथा-साहित्य में प्राय: कल्पित कथा वस्तु को लेकर दीर्घवर्णनों के द्वारा मनोरम सन्निवेश का प्रयास कविगण करतें रहें। कथा का लक्षण यह है-

कथायां सरस वस्तु गद्यैरेव विनिमितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्धक्त्रापवक्त्रकें।
आदौ पद्यैर्नमस्कार: खलादेर्वृत्ताकीर्तनम्।।

आख्यायिका में बीच-बीच में आश्वास या नि:श्वास, नामक परिच्छेद रहतें हैं। आख्यायिका प्राय: किसी राजा के चरित्र के विषय में ही लिखी जाती है। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी 'यवक्रीत', 'प्रियङ्व', 'ययाति' प्रकृति के आख्यान का निर्देशन किया हैं, तथा 'वासवदत्ता', सुमनोत्तरा', 'भैमरथी' प्रकृति की आख्यायिकाओं की गणना की है। परन्तु ये प्रबन्ध इस समय उपलब्ध नहीं है। काल की कराल चेंष्टाओं ने आजतक अनेक ग्रन्थों को विलुप्त कर डाला हैं, जिसका नाममात्र से कुछ परिचय हम प्राप्त कर सकतें है। इन सब ग्रन्थों की चर्चा देखतें हुए, हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि कथा साहित्य भी अत्यन्त चिरकाल सें संस्कृत सरस्वती के पावन अंक में लालित-पालित होकर परिपुष्ट होता रहा हैं।[10]

महाकवि बाणभट्ट - संस्कृत गद्य काव्य का चरमोत्कर्ष बाणभट्ट की कृतियों मे प्राप्त होता है। ये सम्राट् हर्षवर्धन के (606-648 ई.) समकालीन तथा इनके सभापण्डित थें। अत: बाण का स्थिति काल सातवीं शती का पूर्वार्द्ध था। महाकविबाणभट्ट ने अपनी रचना हर्षचरित में उनका स्वयं का जीवन-वृत्ता का उल्लेख किया है। उसमें बाणभट्ट के पिता नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी है। बाल्यावस्था में ही माता के देहान्त हो जाने पर इनका लालन-पालन पिता ने किया था। बाणभट्ट के पूर्वजों का निवास स्थान हिरण्यबाहु (शोण) नदी के तट पर प्रीतिकूट नामक ग्राम था। 14 वर्ष की आयु में पिता के दिवंगत होने पर इनका यौवन काल प्रवासपूर्ण होने सें अव्यवस्थित रहा, किन्तु बाद में संसारिक अनुभव, परिपक्व बुद्धि:, विद्या एवं उदार विचारों सें युक्त होकर सम्राट् हर्ष की **'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती'**की उपाधि से सम्मानित हुए। हर्ष की (मृत्यु 648ई.) के पश्चात् सम्भवत: अराजकता फैलनें पर कन्नौज से प्रीतिकूट लौट आयें। इन्होंनें **'हर्षचरित'** (आख्यायिका) तथा **'कादम्बरी'** (कथा) नामक प्रसिद्ध गद्यकाव्यों की रचना के अतिरिक्त **'चण्डीशतक'** (100 पद्यों में दुर्गा की स्तुति) तथा **'पार्वती परिणय'** नामक नाटक की रचना की हैं।

(1) हर्षचरित -यह महाकविबाणभट्ट की प्रथम गद्यकाव्य रचना है, जो आठ उच्छ्वासों में की एक उत्कृष्ट कोटि की आख्यायिका हैं। प्रथम तीन उच्छ्वासों में महाकविबाणभट्ट की आत्मकथा तथा शेष भाग में सम्राट् हर्ष का जीवन-चरित वर्णित है। यह ऐतिहासिक विषय पर गद्यकाव्य लिखनें का महाकविबाणभट्ट का ही नहीं अपितु संस्कृत साहित्य का प्रथम प्रयास हैं। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से इसकी अपनी विशेषतायें तों हैं ही, साथ ही इसकी अद्भुत वर्णनाशक्ति भी कम प्रभावपूर्ण नहीं हैं कवि सोड्ढल आदि ने हर्षचरित की प्रशंसा की है।

(2) कादम्बरी -यह रचना महाकविबाणभट्ट की ही नहीं अपितु समग्र संस्कृतसाहित्य की सर्वोत्कृष्ट गद्य रचना है। संस्कृत की इस सर्वोत्तम कथा में राजकुमार चन्द्रापीड तथा कादम्बरी की प्रेम-परिणय की कथा संस्कृत वाङ्मय के समस्त वैभव एवं कौशल के साथ वर्णित हैं।महाकवि दण्डी के दशकुमार चरित की भांति 'कादम्बरी' में भी मुख्यकथा में अनेक उपकथायें समाविष्ट है, किन्तु कवि ने पर्याप्त प्रवीणता से उनका निर्वाह एवं विकास किया हैं।भाषा नैपुण्य, विशद चरित्र चित्रण, वर्णन प्रतिभा तथा मानव-भावों के मार्मिक एवं सूक्ष्म अंकन में 'कादम्बरी' सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में एक अद्धितीय रचना है। प्रतीत होता है कि, महाकविबाणभट्ट ने कादम्बरी का कथा बीज 'गुणाढ्य' की कृति 'बृहत्कथा'से ग्रहण किया हैं। इसका प्रधान

रस श्रृंगार है, जिसमें दशकुमार चरित की भांति कही भी अश्लीलता की गन्ध नहीं आती है। 'कादम्बरी' के सभी पात्र सजीव हैं, जिनका चरित्र-चित्रण बड़े विशद रूप से किया गया हैं, इस कारण सें इस रचना का वर्णन-विविधता दर्शनीय हैं। यही कारण है कि, 'कादम्बरी' इतनी अधिक लोकप्रिय रचना हुई कि इसकी प्रशंसा में कितनी उक्तियां प्रचलित हुई हैं, जैसें-

1.'कादम्बरीरसभरेण समस्त एव, मत्तो न किंचिदपिचेतयतोजनोऽयम्।' – (भूषणभट्ट)

2.'कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते, युक्तं कादम्बरी श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिता: वाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यत:।'(सोमेश्वर कृत 'कीर्ति कौमुदी' 1/15)।[11]

महाकवि बाणभट्ट की शैली – महाकविबाणभट्ट ने अपनी दोनों गद्य काव्य रचनाओं में पांचाली रीति का अनुसरण किया है, जिसमें अर्थ के अनुरूप ही शब्दों के पद की योजना की जाती है –

शब्दार्थयो: समो गुम्फ:पांचालीरीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिका वाचि वाणोक्तिषु च सा यदि।।(सरस्वती कण्ठाभरण)

महाकविबाणभट्ट की गद्य शैली में सर्वत्र शब्द और अर्थ व भाषा और भाव का सुन्दर सामंजस्य स्पष्ट दृष्टिगत होता है। विषय के अनुरूप ही शब्दावली प्रयुक्त की गई है। विकट विन्ध्याटवी के वर्णन में कवि का विकट शब्दों एवं समासों का प्रयोग किया गया हैं, इसका सुन्दर उदाहरण है। वसन्त वर्णन में तदनुरूप सुकुमारवर्णो का विन्यास किया गया हैं। महाकवि बाण की गद्यशैली में अलंकारों का समुचित प्रयोग रमणीयता की सृष्टि से करतें है। उनके अनुप्रास भाषा में विलक्षण स्वरमाधुर्य की समुत्पत्ति करतें है। उदाहरण के लिए –**'मधुकरकुलकलकाकलीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु,इभकलभकोल्लनपल्लंववल्लितलवलीवलयै:'।** आदि सामासिक रुचिर अनुप्रासमयी पदावली द्रष्टव्य हैं। महाकविबाणभट्ट ने निरन्तरश्लेषपूर्ण स्वाभावोक्ति प्रधान वर्णनों को ग्राह्य माना हैं। जैसें- जूही को माला में पिरोयें चम्पक पुष्प –

'निरन्तरश्लेषणा: सुजातय: महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव'।

महाकविबाणभट्ट ने रसनोपमा का भी सुन्दर वर्णन किया है जैसें – **'क्रमेण च कृतं में वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्'।।** महाकविबाणभट्ट के अनुसार विषय की नवीनता, सुरूचिपूर्णस्वभावोक्ति, सरल श्लेष स्फुट रूप से प्रतीयमान रस एवं विकट अक्षरबन्ध आदर्शगद्य काव्य का स्वरूप हैं। सामान्यत: बाण ने इस समन्वय प्रधान शैली को अपनाया है, जिसमें नवीन अर्थ की कल्पना, श्लेष प्रधान शब्दों की अद्भूत् योजना, दूसरों के मन के भावों का यथातथ्य चित्रण, वस्तुओं के यथार्थ वर्णन, समास बहुल पदविन्यास तथा कथावस्तु एवं शैली में व्यक्त रूप से बहती हुई रसधारा स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती हैं। महाकविबाणभट्ट ने अपनी रचनाओं में तीन प्रकार की शैलीयों का प्रयोग किया हैं जो निम्न प्रकार हैं – (1) उत्कलिका(दीर्घसमासा) शैली। (2) चूर्णक (अल्पसमासा)। (3) आबिद्ध (समासरहिता)।[12]

महाकवि बाणभट्ट के काव्य में कलापक्ष तथा भावपक्ष दोनों का निर्वाह हुआ है। बाण के गद्य में तत्कालीन समस्त गद्य शैलीयों का समन्वित रूप परिलक्षित होता हैं। बाण ने अप्रत्यक्षत: अपनी शैली के सन्दर्भ में निम्न कथन किया है–

नवाऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्ट: स्फुटो रस:।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।। (हर्षचरित-1/8)

अर्थात् चमत्कार पूर्ण अर्थ भौतिक कल्पना ,सुरूचि पूर्ण स्वाभावोक्ति, स्पष्ट श्लेष रस की सहज अनुभूति तथा अक्षरों की दृढ़ बन्धता ये सभी विशेषताएँ एकत्र मिलना कठिन है, परन्तु बाण के काव्य में यें सभी गुण समन्वित रूप से प्राप्त होतें है। नि:सन्देह बाण की शैली सरस तथा सहृदय सामाजिकों के हृदय की धड़कन है।[13]

पं. अम्बिकादत्त व्यास – पं- अम्बिकादत्त व्यास का संस्कृत गद्यकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। इनका स्थितिकाल 1858 ई. सें 1901 ई. तक है। ये मूलत: जयपुर के निवासी थें। इनकें पिता काशी में जाकर बस गयें इसलियें इनकी शिक्षा दीक्षा वाराणसी में हुई। इनका कार्यक्षेत्र बिहार रहा है। यह संस्कृत साहित्य में **'अभिनव बाण'** के नाम से विख्यात है। इन्होनें 78 ग्रन्थों की रचना की है उसमें से उनकी प्रसिद्ध रचना **'शिवराज विजय'** है, यह 19वीं. शताब्दी का अतिसुन्दर संस्कृत उपन्यास है। इनकी कवि कीर्ति का मुलाधर शिवराज विजय ही हैं।

शिवराज विजय – यह आधनिक संस्कृत गद्य-काव्य की सर्वोत्कृष्ट रचना हैं। शिवराज विजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो 12 निश्वासों में छत्रपति शिवाजी के जीवन-चरित्र को उपन्यस्त किया गया है। यह ग्रन्थ सर्वप्रथम् सन् 1901 में काशी सें प्रकाशित हुआ था। कवि की यह रचना विद्धानों में अति लोकप्रिय हुई। शिवराज विजय काव्य तथा इतिहास का सम्मिश्रणात्मक प्रगतिवादी उपन्यास है।

पं. अम्बिकादत्त व्यास की भाषा शैली– इनकी भाषा शैली बाण की कादम्बरी के समकक्ष है। इसमें वाक्य विन्यास प्राचीन परम्परानुसार है। कवि ने इसमें प्राचीन व अर्वाचीन दोनों शैलीयों का समन्वित रूप प्रस्तुत किया हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसमें वीर रस अभिव्यक्त हुआ है। इसमें यथा अवसर माधुर्य-ओज तथा प्रसाद गुण का प्रयोंग किया गया है। कवि ने भावानुकूल भाषा तथा रसानुकूल पदावली का प्रयोग किया है। वैदर्भी-गौडी तथा पांचाली रीतियों से समन्वित यह उपन्यास आधुनिक गद्य-काव्य की सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसमें कही कादम्बरी के समान समास बहुलता के दर्शन होतें है तथा कहीं-कहीं वाक्य छोटें-छोटें तथा समास रहित है। कवि नें अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है। राष्ट्र-प्रेम, देश-भक्ति उत्पन्न करने वाला शिवराजविजय आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं।[14]

महाकवि बाणभट्ट के पश्चात् भी संस्कृत गद्य काव्यों की रचना होती रही है। यहाँ हम कुछ प्रसिद्ध अन्य गद्यकारों का व रचनाओं का नामोंल्लेख कर रहे है, जो निम्न हैं–

- कवि धनपाल कृत **'तिलक मन्जरी'** जिस पर कादम्बरी का प्रभाव स्पष्ट रूप सें परिलक्षित है।
- वादीभसिंह कृत **'गद्यचिंतामणी'**।
- सोड्ढल की रचना **'उदयसुन्दरी कथा'**।
- वामनभट्टबाण की रचना **'वेमभूपालचरित'**।
- विश्वेश्वर पाण्डेय की **'मन्दारमन्जरी'**।
- पण्डिता क्षमाराव कृत **'कथामुक्तावली'**, **'ग्रामपंचक'** व **'ग्रामज्योति'**।
- डॉ. रामशरण त्रिपाठी की रचना **'कौमुदी कथा कल्लोलिनी'**।
- आदि रचनाएँ व गद्यकार संस्कृत गद्य साहित्य को और अधिक उत्कृष्ट और सम्पन्न बनातें है।[15]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास -लेखक-डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, प्रकाशक-राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, किशनपोल बाजार, जयपुर, संस्करण 2014।पृ.सं. 9-11
2. शुकनासोपदेश -लेखक डॉ. यशवन्त कुमार जोशी, प्रकाशक कमल बुक डिस्टीब्यूटर्स, उदयपुर।पृ.सं. 7
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास -लेखक- डॉ. राकेश कुमार जैन व मनमोहन शर्मा, रचना प्रकाशन, जयपुर संस्करण 2017। पृ.सं. 185-187
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, प्रकाशक-राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, किशनपोल बाजार, जयपुर, संस्करण 2014।पृ.सं. 90-92
5. वहीं।पृ.सं. 92-93
6. वहीं।पृ.सं. 93-94
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, प्रकाशक-राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, किशनपोल बाजार, जयपुर, संस्करण 2014।पृ.सं. 94
8. वहीं।पृ.सं. 95
9. संस्कृत साहित्य का इतिहास -लेखक- डॉ. राकेश कुमार जैन व मनमोहन शर्मा, रचना प्रकाशन, जयपुर संस्करण 2017। पृ.सं. 196
10. सुबन्धु कृत -'वासवदत्ता' टीकाकार पं. श्री शंकरदेव शास्त्री,प्रकाशक चौखम्बा विद्या भवन चौक, बनारस।पृ.सं. 3
11. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, प्रकाशक-राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, किशनपोल बाजार जयपुर, संस्करण 2014।पृ.सं. 96
12. वहीं।पृ.सं. 97-98
13. शुकनासोपदेश -लेखक -डॉ. यशवन्त कुमार जोशी, प्रकाशक कमल बुक डिस्टीब्यूटर्स, उदयपुर।पृ.सं. 27
14. वहीं।पृ.सं. 18
15. शुकनासोपदेश -लेखक -डॉ. यशवन्त कुमार जोशी,प्रकाशक कमल बुक डिस्टीब्यूटर्स, उदयपुर।पृ.सं. 19-20

****